अंग्रेजी राज के सिक्कों से आदिवासी निकालते हैं सुरीली तान

जगदलपुर । हवा में लहराकर बांसुरी की मीठी धुन सुनने वाले बस्तर के आदिवासी अपनी परंपरागत बांसुरी में आज भी 72 साल पुराना सिक्का उपयोग करते हैं। 1943 का छेदवाला वह तांबे का सिक्का नहीं मिलता, तो नट-बोल्ट के साथ उपयोग किए जाने वाले वॉसर से काम चला लेते हैं।

बस्तर की हाथ बांसुरी का उपयोग वनांचल में लंबे समय से होता आ रहा है। राह चलते या नृत्य करते हुए इसे हवा में लहरा कर ग्रामीण इसकी मीठी धुन का आनंद लेते हैं। इसे बनाने के लिए सबसे जरूरी होता है। धातु का एक छल्ला।

बस्तर का आदिवासी छल्ले के रूप में करीब 72 साल से 1943 में ब्रिटिश सरकार व्दारा जारी एक पैसे का उपयोग करता आ रहा है,चूंकि इस सिक्के के मध्य में बड़ा छेद होता है ।तांबे के इस सिक्के को बस्तर में काना पैसा तो छग के मैदानी इलाकों में भोंगरी कहा जाता है।

दुर्लभ हो गया है सिक्का

वर्षों से ग्रामीण इसे सहेजकर रखते रहे हैं, परन्तु 72 साल पुराना यह सिक्का अब दुर्लभ हो गया है, इसलिए हाथ बांसुरी बनाने के लिए मिल नहीं पाता। मोहलई करनपुर के समरथ नाग बताते हैं कि उनके गांव में करीब 10 परिवार हाथ बांसुरी बनाने का काम करता है। क्षेत्र के हाट- बाजारों में इस बांसुरी की मांग है। वहीं जगदलपुर स्थित शिल्पी संस्था से भी पर्यटक इसे खरीदकर ले जाते हैं।

इन्होने बताया कि 1943 का यह तांबे का सिक्का बड़ी मुश्किल से मिलता है, इसलिए कारीगरों ने विकल्प ढूंढ लिया है। पहले वे एल्यूमिनियम के पुराने बर्तनों को काट कर सिक्के की जगह लगाते रहे, परन्तु अब बाजार में उपलब्ध नट-बोल्ट के साथ उपयोग किए जाने वाले वॉसर से काम चला रहे हैं।

भागवत बघेल ने बताया कि बस्तर में हाथ बांसुरी के पुराने शौकीन अभी भी सौ रुपए की बांसुरी में पुराना सिक्का लगाकर देने पर मुंहमांगी कीमत देने को तैयार रहते हैं चूंकि तांबे के सिक्के वाले बांसुरी की आवाज स्पष्ट और बेहतर होती है।

साभार- http://naidunia.jagran.com/ से

.